नाटक

सभ्यता के प्रारंभिक चरण में, मनुष्य द्वारा स्वयं को अनुरंजित करने के लिए, जिन कलाओं का आविष्कार किया गया उनमें 'नाटक' का प्रमुख स्थान है। प्राचीन भारतीय आख्यान के अनुसार – "नाट्याख्यः पंचमम् वेदम्", ऋग्वेद से संवाद, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस लेकर स्वयं ब्रह्मा ने इस "पाँचवें वेद" का निर्माण लोकरंजन के उद्देश्य से किया। दृश्य - काव्य होने के कारण 'नाटक' साहित्य की सभी विधाओं से श्रेष्ठ है - "काव्येषु नाटकम् रम्यम्"। गद्य की अन्य विधाओं के सदृश वर्तमान नाटक - साहित्य का विकास भी भारतेन्दु युग से ही माना जाता है। हिन्दी के संपूर्ण नाट्य-साहित्य को भली प्रकार समझने के लिए इसे तीन भागों में विभक्त करना सुविधाजनक होगा -

(i) भारतेन्दु युगीन नाट्य - साहित्य
(ii) प्रसाद और उनका समकालीन नाट्य - साहित्य
(iii) प्रसादोत्तर नाट्य साहित्य।

(i) भारतेन्दु युगीन नाट्य - साहित्य :-

, यद्यपि विशुद्ध नाट्य-रीति का ध्यान रखकर हिन्दी का सर्वप्रथम नाटक 'नहुष' (सन् 1857 ई०) भारतेन्दु के पिता श्री गोपालचन्द्र गिरिधर दास द्वारा

ब्रजभाषा में लिखा जा चुका था, किन्तु खड़ीबोली में सर्वप्रथम नाटक का श्रेय भारतेन्दु के 'विद्या - सुन्दर' (1868ई०) नाटक को ही जाता है। संस्कृत के 'चौर पंचाशिका' के बंगला - संस्करण का यह हिन्दी अनुवाद था। इसके पश्चात् भारतेन्दु ने सामाजिक, पौराणिक एवं राजनीतिक सभी प्रकार के नाटकों की रचना की। उन्होंने अनूदित तथा मौलिक कुल मिलाकर सत्रह नाटकों की रचना की, जिनकी सूची निम्न है -

(1) विद्या सुन्दर (1868), (2) रत्नावली (1868) (3) पाखंड विडम्बन (1872), (4) धनंजय विजय (1873), (5) वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति (1873) (6) कर्पूर मंजरी (1875), (7) सत्य हरिश्चन्द्र (1875), (8) प्रेम जोगिनी (1875), (9) श्री चन्द्रावली (1876), (10) विषस्य विषमौषधम (1876) (11) भारत जननी (1877); (12) मुद्रा राक्षस (1878) (13) दुर्लभ बन्धु (1880), (14) भारत दुर्दशा (1880) (15) नील देवी (1881) (16) अन्धेर नगरी (1881) (17) सती - प्रताप (1883, अपूर्ण)

भारतेन्दु - काल में रचित नाटकों को विषय एवं प्रवृत्ति - भेद के आधार पर - पौराणिक, ऐतिहासिक, रोमानी, सामयिक उपादानों के आधार पर रचित, प्रहसन और प्रतीकवादी - इन वर्गों में रखा जा सकता है। स्वयं भारतेन्दु ने उपर्युक्त सभी वर्गों के नाटकों की रचना

की है।

पौराणिक नाटक :- इस काल में सर्वाधिक संख्या पौराणिक नाटकों की है जिनके विषय भेद से तीन वर्ग किये जा सकते हैं -

(i) कृष्ण एवं उनके परिवार के व्यक्तियों के चरित्र पर आधृत नाटक - जिनमें भारतेन्दु कृत 'चन्द्रावली', अंबिका दत्त ब्यास कृत 'ललिता', हरिहर दूबे कृत 'महारास', सूर्यनारायण सिंह कृत 'श्यामानुराग नाटिका', चन्द्रशर्मा - कृत 'उषा हरण' और अयोध्या सिंह उपाध्याय कृत 'प्रद्युम्न विजय' तथा 'रुक्मिणी परिणय' उल्लेखनीय हैं।

(ii) राम एवं उनसे संबंधित पात्रों के चरित्र पर आधृत नाटक - इनमें देवकी नंदन खत्री कृत 'सीता हरण' और 'रामलीला', शीतला प्रसाद त्रिपाठी कृत 'राम चरितावली', ज्वाला प्रसाद मिश्र कृत 'सीता - बनवास' और द्विज दास कृत 'राम चरित्र नाटक' उल्लेखनीय हैं।

(iii) अन्य पौराणिक आख्यानों पर आधृत नाटक - भारतेन्दु कृत 'सत्य हरिश्चन्द्र' तथा 'सती प्रताप', गजराज सिंह कृत 'द्रौपदी हरण', श्रीनिवास दास कृत 'प्रह्लाद चरित्र', बाल कृष्ण भट्ट कृत 'नल दमयन्ती स्वयंवर' तथा शालिग्राम लाल कृत 'अभिमन्यु' उल्लेखनीय हैं।

ऐतिहासिक नाटक :- भारतेन्दु कृत 'नील देवी', श्री निवास दास कृत 'संयोगिता स्वयंवर', राधा चरण गोस्वामी कृत 'अमर सिंह राठौर', तथा राधाकृष्ण दास कृत 'महाराणा प्रताप' उल्लेख्य हैं। इनमें सर्वाधिक लोकप्रियता 'महाराणा प्रताप' को प्राप्त हुई।

प्रेमप्रधान रोमानी नाटक :- इस वर्ग में श्री निवास दास कृत 'रणधीर प्रेम मोहिनी' हिन्दी का पहला दुखांत नाटक है। इसे विशेष प्रसिद्धि मिली। इसके अलावा किशोरी लाल गोस्वामी कृत 'मयंक मंजरी' तथा गोकुलनाथ शर्मा कृत 'पुष्प वती' उल्लेखनीय हैं।

सामयिक उपादानों पर लिखे गये नाटक :-
इनमें भारतेन्दु कृत 'भारत दुर्दशा', बालकृष्ण भट्ट कृत 'नई रोशनी का विष', राधाकृष्ण दास कृत 'दुःखिनी बाला' काशीनाथ खत्री कृत 'विधवा विवाह' और देवकीनंदन त्रिपाठी कृत 'भारत-हरण' उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों में देश की तत्कालीन दुर्दशा का चित्र खींचा गया है तथा सामाजिक बुराईयों को दूर करने की प्रेरणा दी गई है।

प्रहसन :- इस काल में अनेक सफल प्रहसनों की रचना की गई। भारतेन्दु कृत 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' तथा 'अन्धेर नगरी'

बालकृष्ण भट्ट कृत 'जैसा काम वैसा परिणाम' और राधाचरण गोस्वामी कृत 'बूढ़े मुँह मुँहासे' उल्लेखनीय हैं। इनमें हास्य-व्यंग्य पूर्ण शैली में धार्मिक पाखंडों और सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार हुआ है।

प्रतीकवादी नाटक :- कमलाचरण मिश्र कृत 'अद्भुत नाटक', रतनचन्द कृत 'न्याय सभा' और शंकरानन्द कृत 'विज्ञान' इस वर्ग की उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। इन नाटकों में भावों एवं मनोवृत्तियों को ही पात्रों का रूप दिया गया है।

वस्तुत: भारतेन्दु काल में नाटकों की रचना का मूल उद्देश्य मनोरंजन के साथ ही जनमानस को जाग्रत करना और उसमें आत्मविश्वास पैदा करना भी था। फलस्वरूप पौराणिक एवं ऐतिहासिक चरित्रों का सहारा लेकर सत्य, न्याय, त्याग आदि मानवीय मूल्यों के प्रति समाज में आस्था जगाने पर अत्यधिक बल दिया गया।

भारतेन्दु युगीन साहित्यकारों द्वारा संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी भाषाओं से हिन्दी में अनूदित नाटकों के महत्त्व से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। इन अनुवादों से न केवल नाट्य-साहित्य को नवीन दृष्टि प्राप्त हुई, वरन् हिन्दी-साहित्यकारों के रचना-संस्कार को विस्तृत

आयाम भी प्राप्त हुआ।

शास्त्रीय दृष्टि से इस युग के नाटक संस्कृत नाट्य - शास्त्र की मर्यादा की रक्षा करते हुए युग और परिस्थिति के अनुसार उसमें थोड़ी छूट लेकर लिखे गये हैं। साथ ही पाश्चात्य नाट्य शास्त्र के प्रभाव से भी वे अछूते नहीं हैं।

इस समय तक पारसी थियेटरों की स्थापना हो चुकी थी। व्यावसायिक कारणों से इनमें अत्यंत हीन रुचि के दृश्यों एवं नाच गानों की योजना की जाती थी। भारतेन्दु ने इनका प्रबल विरोध किया और सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं उद्देश्यपूर्ण नाटकों को महत्व दिया।

भारतेन्दु के पश्चात् हिन्दी में साहित्यिक नाटकों की परंपरा कुछ दब सी गई तथा द्विवेदी युग में पारसी थियेटरों के नाटक जनता में विशेष लोकप्रिय हुए। स्पष्टतः उस समय हिन्दी प्रदेश की सामान्य जनता का मानसिक स्तर पर्याप्त नीचा था। क्रमशः उच्च शिक्षा के प्रचार प्रसार के साथ जन रुचि में परिवर्तन हुआ तथा पारसी थियेटरों का स्थान चित्रपट ने ले लिया इस प्रकार पारसी कंपनियों की परंपरा समाप्त हुई तथा 'प्रसाद' जी के नाटकों

से हिन्दी में साहित्यिक नाटकों का द्वितीय उत्थान आरंभ हुआ।

(ii) 'प्रसाद' और उनका समकालीन नाट्य साहित्य :-

यद्यपि प्रसाद जी ने सन् 1918 ई॰ के पूर्व ही नाटकों की रचना आरंभ कर दी थी, पर उनकी आरंभिक रचनाएँ – 'सज्जन', 'कल्याणी - परिणय', 'प्रायश्चित' नाट्य कला की दृष्टि से अपरिपक्व हैं। 'राज्यश्री' की रचना भी सन् 1915 में हुई थी, किन्तु बाद में नये दृश्यों तथा पात्रों के समावेश द्वारा उन्होंने 1937 में इसे नाटकीय पूर्णता प्रदान की। विशाख (1921), अजातशत्रु (1922), कामना (1924), जनमेजय का नागयज्ञ (1926), स्कंदगुप्त (1928), एक घूँट (1930), चन्द्रगुप्त (1931) और ध्रुवस्वामिनी (1933) उनकी उत्कृष्ट रचनाएँ हैं। इनके माध्यम से उन्होंने हिन्दी नाट्य - साहित्य को विशिष्ट स्तर और गरिमा प्रदान की। वस्तुतः हिन्दी उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में जो स्थान प्रेमचन्द का है, नाटक के क्षेत्र में वही स्थान 'प्रसाद' का है।

भारतेन्दु द्वारा स्थापित की गई नाटक और रंगमंच की परंपरा को जयशंकर प्रसाद ने नया जीवन और नई दिशा प्रदान की। उस युग में पारसी थियेटरों से प्रभावित हिन्दी का

शौकिया रंगमंच नितांत अविकसित था। फलतः प्रसाद ने साहित्यिक रंगमंच की स्वयं कल्पना करके उसी की पृष्ठभूमि में अपने नाटकों की रचना की। रंगमंचीय व्यावहारिकता के अभाव के परिणामस्वरूप उनके नाटक अन्य सभी दृष्टियों से उत्कृष्ट होते हुए भी अभिनय की दृष्टि से उतने सफल न हो पाये।

प्रसाद जी मुख्यतः ऐतिहासिक नाटककार के रूप में प्रतिष्ठित हैं। परतन्त्र देश का लेखक यदि वर्तमान की क्षतिपूर्ति अपने गौरवमय अतीत में करता है, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। उनके नाटकों में पौराणिक युग (जनमेजय का नागयज्ञ) से लेकर हर्षवर्धन-युग (राज्यश्री) तक के भारतीय इतिहास की गौरवमयी झाँकी देखने को मिलती है। शायद ही हिन्दी के किसी अंन्य लेखक ने भारतीय संस्कृति, समृद्धि, शक्ति और औदात्य का ऐसा भास्वर चित्र प्रस्तुत किया हो। इन नाटकों में जो चरित्र उभरे हैं वे शील, शक्ति और औदात्य के प्राणवन्त विग्रह हैं। गौतम बुद्ध, चाणक्य, चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, राज्यश्री, ध्रुवस्वामिनी आदि ऐतिहासिक पात्र हैं पर प्रसाद के नाटकों में इनका जो रूप उभरा है वह मात्र इतिहास की उपलब्धि नहीं हो सकता। प्रसाद जी इतिहास

एवं पुरातत्व के पंडित थे। उन्होंने बौद्ध-कालीन भारत का विशेष अध्ययन किया था। इसी कारण वे तत्कालीन भारत के वातावरण, राजकीय शिष्टता और शासन-व्यवस्था के चित्रण में विशेष रूप से समर्थ हुए थे। प्रसाद के विविध पात्रों तथा उनके अनुरूप संवादों के माध्यम से वह पूरा युग ही सजीव होकर सामने उपस्थित हो गया है। महाबलाधिकृत, परमभट्टारक, पराक्रम दंडनायक न्यायाधिकरण, नसिर गरुड़ध्वज आदि शब्द इस काल में भी प्राचीन सभ्यता की जीवंत झाँकी प्रस्तुत करते हैं।

प्रसाद ने तत्कालीन वातावरण को सार्थकता प्रदान करने वाले सजीव और सबल तथा कोमल और संगीतमय स्त्री पात्रों की भी सृष्टि की है जो अपनी ममता की दृढ़ता तथा त्याग के तेज में सबलों की आभा को भी फीकी कर देते हैं। उनके पात्रों में बाह्य संघर्ष के साथ अन्तर्द्वन्द्वों के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। उन्होंने केवल भारतीय संस्कृति के गौरव-गान के लिए ही नाटकों की रचना नहीं की बल्कि इतिहास की प्राचीन घटनाओं के माध्यम से वर्तमान की समस्याओं का चित्रण और समाधान भी प्रस्तुत किया। "इतिहास अपने को दुहराता है" इस

उक्ति का बड़ा सुन्दर उपयोग उन्होंने अपने नाटकों में किया है। यों तो उनके प्रायः सभी नाटकों में युगीन समस्याओं का समावेश हुआ है, पर 'ध्रुवस्वामिनी' तो ऐतिहासिक नाटक होकर भी विशेष रूप से समस्या नाटक बन गया है। इसमें तलाक और पुनर्विवाह की समस्या को बड़े कौशल से उठाया गया है। 'ध्रुवस्वामिनी' से पता चलता है कि 'प्रसाद' कितने युगधर्मी थे। वह अतीत के स्वर्णयुग में विचरण करते हुए भी अपने समाज के प्रति पूर्ण जागरूक थे।

'प्रसाद' के नाट्य-शिल्प पर संस्कृत नाट्य-साहित्य की गौरवमयी परंपरा के साथ, अंग्रेजी के नाटककारों का भी प्रभाव पड़ा। शेक्सपीयर से प्रभावित द्विजेन्द्रलाल राय जैसे समकालीन बंगला नाटककारों का प्रभाव भी उनपर पड़ा। यही नहीं पारसी नाटक कंपनियों का - जिन्हें वे बिल्कुल भी पसंद नहीं करते थे, प्रभाव भी उन पर अप्रत्यक्ष रूप से पड़े बिना न रहा। उनके प्रारंभिक नाटकों में गद्यात्मक वार्तालापों के बीच तुकबन्दी, पद्यात्मक संवाद तथा 'नर्तकियों का नाचते हुए प्रवेश', आदि पारसी नाटकों के प्रभाव से ही आये जान पड़ते हैं। वस्तु-योजना, नायक-परिकल्पना

तथा रस - सृष्टि में जहाँ वे संस्कृत नाटकों के निकट प्रतीत होते हैं, वहाँ कथावस्तु में संघर्ष का समायोजन, अंकों का दृश्यों में विभाजन, वस्तु - संघटन एवं पात्रों की सृष्टि में संस्कृत - काव्य-शास्त्र की रूढ़ियों की अवहेलना उन्हें अंग्रेजी - विशेषकर शेक्सपीयर - के नाटकों के निकट ले जाती है। लगता है बाद में उन्होंने इब्सन और बर्नार्ड शॉ से भी प्रभाव ग्रहण किया था - 'ध्रुवस्वामिनी' में इस प्रभाव की झलक मिलती है।

कलात्मक उत्कर्ष की दृष्टि से प्रसाद के प्रमुख नाटक तीन हैं- 'स्कन्दगुप्त', 'चन्द्रगुप्त' तथा 'ध्रुवस्वामिनी'। 'स्कन्दगुप्त' में समृद्धि और ऐश्वर्य के शिखर पर आसीन गुप्त - साम्राज्य की उस स्थिति का चित्रण हुआ है जहाँ आंतरिक कलह, पारिवारिक संघर्ष और विदेशी आक्रमणों के फलस्वरूप उसके भावी क्षय के लक्षण प्रकट होने लगे थे। विषय और रचना शिल्प की दृष्टि से यह प्रसाद का सर्वश्रेष्ठ नाटक माना जाता है। भारतीय और पाश्चात्य नाटक - पद्धतियों का इसमें बहुत ही सुन्दर समन्वय हुआ है। 'चन्द्रगुप्त' की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें विदेशियों से भारत के संघर्ष और उस संघर्ष में अंततः भारत की विजय की 'थीम' उठाई गई है।

Teacher's Signature